ओ३म्

आर.एन.आई-संख्या : DELHIN/2007/23260
पोस्टल रजि. संख्या : DL (N) 06/213/14-16
प्रकाशन की तिथि–2 अक्टूबर 2014

सृष्टि संवत्- 1,96,08,53,115
युगाब्द-5115, अंक-87-75, वर्ष-8,
कार्तिक मास, कृष्ण पक्ष, अक्टूबर-2014
शुल्क- 5/ रुपये प्रति, द्विवार्षिक शुल्क-100/ रुपये
डाक प्रेषण तिथि:5-6 अक्टूबर, कुल पृष्ठ-8

प्रेषक : सम्पादक, कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
आर्ष गुरुकुल, टटेसर जौन्ती, दिल्ली-81

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा

महर्षि दयानन्द सरस्वती

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा का मासिक विचार पत्र)

E-mail : krinvantovishwaryam@gmail.com सम्पर्क सूत्रः 9350945482 Web: www.aryanirmatrisabha.com

संपादक : हनुमत्प्रसाद 'अथर्ववेदाचार्य' सह-संपादक : आचार्य सतीश

स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो३नवग्वैः। सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र बलं रवेण दरयो दशग्वैः॥ –ऋ० १।११।६२।४

व्याख्यान–हे (सः) वह (इन्द्र) परमैश्वर्य युक्त (शक्र) शक्ति को प्राप्त करने वाले सभाध्यक्ष! जो आप (नवग्वैः) नवों से प्राप्त हुई गति वा (दशग्वैः) दश दिशाओं में जाने (सरण्युभिः) सब शास्त्रों में विज्ञान करने वाली गतियों से युक्त (विप्रैः) बुद्धिमान् विद्वानों के साथ जैसे सूर्य्य (सुष्टुभा) उत्तम द्रव्य गुण और क्रियाओं के स्थिर करने वा (स्तुभा) धारण करने वाले (रवेण) शस्त्रों के शब्द से जैसे सूर्य (सप्त) सात संख्या वाले स्वरों के मध्य में वर्त्तमान (स्वरेण) उदात्तादि वा षड्जादि स्वर से (अद्रिम्) बलयुक्त (फलिगम्) मेघ का हनन करता है वैसे शत्रुओं को (दरयः) विदारण करते हो (सः) सो आप हम लोगों से (स्वर्यः) स्तुति करने योग्य हो।

सम्पादकीय

शिथिलता छोड़कर सक्रिय हों

संसार भर में अनेकों विचारधाराएँ समय-समय पर प्रतिस्थापित होती रही हैं। सृष्टि के प्रारम्भ से वैदिक विचार धारा से लेकर उसके बाद भी अनेकों विचारधाराएँ प्रचलित हुई हैं। लेकिन कोई विचारधारा कितनी प्रचलित होती है और कितनी व्यापक तथा स्थाई होती है, इसके पीछे दो ही मुख्य कारण हैं कि उसको मानने वाले कितना पुरुषार्थ करते हैं और उसके पीछे बल कितना है और बल सबसे बड़ा शासन का होता है। यह ठीक है कि विचारधारा स्वयं में इतनी शक्तिशाली होती है कि वे शासन बदल देती है और नए शासन स्थापित कर देती है, लेकिन उस विचारधारा को अपनाने वाले व्यक्तियों के पुरुषार्थ के बिना यह संभव नहीं है। अर्थात् विचारधारा मूर्त है उसको विस्तृत तथा प्रतिस्थापित करने के लिए चेतन अर्थात् उसके अनुयायियों का पुरुषार्थ व शासन का बल आवश्यक है और शासन का बल भी बिना पुरुषार्थ के प्राप्त करना संम्भव नहीं है, ना पहले कभी था, ना ही आज के युग में है चाहे वह प्रजातांत्रिक व्यवस्था ही क्यों न हो।

अनेकों उदाहरण इस प्रकार के इतिहास में उपलब्ध हैं कि जिस विचारधारा को सत्ता का संक्षरण प्राप्त हुआ, चाहे वह विचारधारा अधिक उपयोगी हो, कम उपयोगी हो या अनुपयोगी हो, उसका न केवल विस्तार सत्ता का संक्षरण प्राप्त होते ही बढ़ता चला गया, बल्कि जन-जन में व्यापक हो गया। उदाहरण स्वरूप बुद्ध की विचारधारा का विस्तार सम्राट अशोक द्वारा, ईसा का विस्तार रोम शासकों द्वारा, मुहम्मद की प्रतिस्थापना अरब शासकों द्वारा, कम्यूनिस्टों की विचारधारा रुस के शासकों द्वारा विस्तारित हुई। इसी प्रकार विचारधाराओं का पतन भी शासकों के पतन के साथ होता रहा है। और इसका सबसे बड़ा उदाहरण है वेद को मानने वाले शासकों का जब महाभारत काल के आस पास व उसके बाद व्यापक रुप से पतन हुआ तो वैदिक विचारधारा संसार भर से सिमटती चली गई। अर्थात् कोई भी विचारधारा बिना पुरुषार्थ व बिना सत्ता के संक्षरण के विस्तृत व स्थायित्व प्राप्त नहीं कर सकती चाहे वह संसार की सर्वश्रेष्ठ, सर्वहितकारी, ईश्वर प्रदत्त वैदिक विचारधारा ही क्यों न हो।

आर्यों! ऋषि दयानन्द की विद्वता व पुरुषार्थ के कारण आज हम वेदों के ज्ञान, व सिद्धान्तों से परिचित हैं। इन सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्तों को जन-जन तक फैलाने का प्रयास भी कर रहे हैं। हजारों युवक आर्य बनकर इसके लिए पुरुषार्थ भी कर रहे हैं। अनेकों आर्य भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपना पुरुषार्थ कर रहे हैं, उन्हीं में कुछ शासन के लिए भी संघर्ष कर रहे हैं, जिससे आर्य विचारधारा को व्यापक व स्थायी बनाया जा सके। वे भी जानते हैं कि संघर्ष लम्बा है, पहले भी प्रयास किया है, आज भी कर रहे हैं, आगे भी करते रहेंगे क्योंकि सिद्धान्त को समझकर लक्ष्यप्राप्ति का मार्ग वे जानते हैं, इसलिए मार्ग पर चलना महत्वपूर्ण है, सफलता अवश्य मिलेगी और सफलता निर्भर करती है हमारे पुरुषार्थ पर। हाँ, यदि लक्ष्य प्राप्ति से पहले रुक जाते हैं तो असफलता भी मिलती है और चलते रहने से मार्ग यदि सही है तो लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य होती है। अतः आर्यों हम सब का कर्तव्य बनता है कि वेद प्रतिस्थापना के जिस लक्ष्य को हम प्राप्त करना चाहते हैं, उस लक्ष्य के लिए जो भी, जिस क्षेत्र में भी संघर्षरत हो, हमें उसका सहयोग करना चाहिए।

शेष अगले पृष्ठ पर

सम्पादकीय का शेष.....

हम सब का लक्ष्य अधिक से अधिक आर्य बनना और राष्ट्र को आर्यावर्त्त बनाना है। हमें अपने लक्ष्य को हर समय ध्यान में रखना चाहिए। बिना पुरुषार्थ के न सफलता मिलती है और न ही कार्य करने की ऊर्जा। शिथिलता व्यक्ति को उसके लक्ष्य से भटका देती है, जिस प्रकार स्वार्थ व्यक्ति को उसके श्रेष्ठ लक्ष्य से उसे दूर कर देता है, इसी प्रकार शिथिलता लक्ष्य को असम्भव बना देती है, अत: हमें पुरुषार्थ के लिए निरन्तर सक्रिय बने रहना चाहिए। मेरा उन सब आर्यों से निवेदन, अनुग्रह व निर्देश है कि हम जहाँ भी हों हमारी सक्रियता का अनुभव आस-पास लोगों को होना चाहिए। सभी को यह लगना चाहिए कि हमारा एक लक्ष्य है, हम एक लक्ष्य के लिए कार्य कर रहे हैं, लक्ष्य भले ही आज दूर लगता हो लेकिन उस ओर बढ़ तो रहे हैं। थककर भी जितनी दूर चला जा सके चलने का प्रयास करते रहना चाहिए, क्या पता कल हमारे ही वंशज इतने सक्षम हो जाएं कि वे हमारे द्वारा निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त कर ले जाएं, लेकिन आज हम शिथिल हुए तो भविष्य की हमारी पीढ़ी भी लक्ष्यहीन हो जाएगी।

आर्यों, हम सब का सौभाग्य है कि आर्य निर्माण की जो प्रक्रिया चल रही है उसके परिणाम सुखद हैं, आज तीन-तीन पीढ़ियाँ कार्य में लगी हुई हैं और वर्तमान में एक ऐसी पीढ़ी तैयार हो रही है जो अधिक ऊर्जावान और पुरुषार्थी है। अत: हम सब का कर्तव्य है कि पुरुषार्थ को अपनी जीवन शैली बनाएं, अपने लक्ष्य को ध्यान में रखें और निरन्तर बिना शिथिल हुए, कमजोर पड़े, बढ़ते ही रहें। यही हमें लक्ष्य तक ले जाएगा, आर्यों की वृद्धि ही इस राष्ट्र और भावी पीढ़ी के संरक्षण का उपाय है।

!! आत्मा की आवाज !!

मेरे प्रभु तू ही बता, तेरे सिवा मैं क्या करूँ !
तेरी शरण में आ पड़ा, जग की शरण को क्या करूँ !
सूरज में तेरा तेज है, चन्द्र में तेरी चाँदनी !
तेरी चमक के सामने, दीपक जला के क्या करूँ!
मेरे प्रभु तू ही बता.....।।1।।
पर्वत के शिखर पर तू ही, सागर की गहरी धार में है।
निर्लेप है तू, तो तुझे चन्दन लगा के क्या करूँ।
मेरे प्रभु तू ही बता.....।।2।।
जल थल में तू रमा हुआ, कण-कण में तेरा वास है।
तूमको बुलाने के लिए, घण्टे बजा के क्या करूँ।
मेरे प्रभु तू ही बता.....।।3।।
नभ में तेरा ही गीत है, फलों में तेरा रंग, खुशबू।
हृदय में तेरा वास है, तेरी तलाश क्या करूँ।
मेरे प्रभु तू ही बता.....।।4।।
शाहों का शाह तू प्रभु, दीनों का दीनानाथ तू।
तेरे सिवा मैं और को, अपना बना के क्या करूँ।
मेरे प्रभु तू ही बता, तेरे सिवा मैं क्या करूँ।।5।।

संकलन कर्ता- आर्य कुमार

यज्ञ की श्रेष्ठ परम्परा

वैदिक परम्परा में यज्ञ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। देवताओं की पूजा करना, संगतिकरण करना और दान देना में यज्ञ पद के अर्थ हैं। देवताओं की पूजा का अभिप्राय है- विद्वानों, माता-पिता, आचार्य (गुरुजनों) अतिथि, न्यायकारी राजा धर्मात्मा जनों का सत्कार करना। विद्वान्, श्रेष्ठ आप्तजनों के समीप रहना और उनके साथ व्यवहार करना संगतिकरण करना। सुपात्र को देने का नाम दान है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने लिखा है- यज्ञ उनको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों के सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या उससे उपयोग और विद्या आदि शुभगुणों का दान अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि, जल, ओषधी की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचना है। उसी को उत्तम समझता हूँ।

अत: ध्यान देने योग्य यह है जब तक आर्यावर्त्त में यज्ञ विद्या का ठीक-ठीक प्रयोग समाज में होता रहा, तब तक यह आर्यावर्त्त सारे विश्व को अपने ज्ञान, विज्ञान, आचरण व व्यवहार से मार्गदर्शन करता रहा और विश्व गुरु कहलाता रहा। जब से यह यज्ञ परम्परा लुप्त हुई हम दासों के भी गुलाम रहे क्योंकि हमने संगति करना, देवपूजा करना, श्रेष्ठों से उपकार लेना छोड़ दिया, समाज में न्यूनता बढ़ती गई और समाज का संगठन बिखर गया और हमने विदेशी आक्रांताओं के गुलाम बनकर हजारों वर्षों तक गुलामी का दु:ख भोगा।

हम अग्नि को देवताओं का मुख मान कर, जो भी आहुति यज्ञाग्नि में देते हैं वह आहुति सारे वातावरण को शुद्ध कर देती है। जिन मन्त्रों का हम उच्चारण करते हैं, वे मन्त्र हमको एक निराकार ईश्वर की भक्ति में विश्वास पैदा कराते हैं। हम भिन्न-भिन्न प्रकार की जड़ता से विमुख हो जाते हैं, आज्ञानता से छूट जाते हैं। सच्चे न्यायकारी, दयालु परमात्मा की उपासना करके श्रेष्ठ कर्मों की और हमारी आस्था बढ़ती जाती है। और समाज में एकता व संगठन के भाव पैदा होते हैं। चारों ओर सुखों की वर्षा होने लगती है। जितने भी मन्त्र यज्ञ में बोले जाते हैं वे हमें प्रेरणा देते हैं कि हम अपने आचरण को शुद्ध कर अपनी आत्मा को शुद्ध बना इस संसार को और अधिक सुखमय बनायें। सत्य, यश और श्री की प्राप्ति यज्ञ से करें। यज्ञ कर्म विष्णु रुप है। वह सारे संसार में फैलकर सुखों की वृद्धि करता है। अत: हम यज्ञीय भावनाओं को बढ़ायें, अपने जीवन में फैलायें, जिससे यह संसार और भी सुखमय बन सके और हम सभी भी अपने जीवन में आनन्द ले सकें।

आचार्य लोकेन्द्र शास्त्री

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा की वेबसाईट पर उपलब्ध

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा की वेबसाईट www.aryanirmatrisabha.com व www.aryanirmatrisabha.org से भी पत्रिका को प्राप्त किया जा सकता है। पाठकगण पत्रिका को उपरोक्त साईट से डाऊनलोड कर पढ़ सकते हैं व सत्रों की सूचना भी प्राप्त की जा सकती है।

आओ यज्ञ करें!

पूर्णिमा	08 अक्टूबर	दिन-बुधवार	मास-आश्विन	ऋतु-शरद	नक्षत्र-उत्तराभाद्रपदा
अमावस्या	23 अक्टूबर	दिन-बृहस्पतिवार	मास-कार्तिक	ऋतु-हेमन्त	नक्षत्र-चित्रा
पूर्णिमा	06 नवम्बर	दिन-बृहस्पतिवार	मास-कार्तिक	ऋतु-हेमन्त	नक्षत्र-अश्विनी
अमावस्या	22 नवम्बर	दिन-शनिवार	मास-मार्गशीर्ष	ऋतु-हेमन्त	नक्षत्र-विशाखा

वर्तमान को सम्भालना आवश्यक

दीक्षिका आर्या 'बाजीतपुर' दिल्ली

कितनी झकझोर कर देने वाली पंक्तियाँ हैं। हम अपने राष्ट्र का दूसरों के सामने बखान करते नहीं थकते कि उतंग पर्वतों, मीठे नीर की नदियों से सुशोभित ये धरा। शौर्य, पराक्रम, साहसियों की धरा, ज्ञान, विज्ञान, कला, औषधियों से परिपूर्ण भूमि। सुबह-शाम ढलते-उगते सूर्य का मनोरम दृश्य, दुग्ध-धवल चाँदनी, सरसराती शरद, धमधमाती वर्षा ऋतु, वसंत ऋतुराज, प्रेम, सद्भावना परोपकार, आदर-सम्मान, स्नेह, वात्सल्य, साहित्य, भाषा क्षेत्रीयता व दया के लिए प्रसिद्ध भूमि। जहाँ प्राकृति सौंदर्य ऐसा कि चलते को अपना बना ले। समुद्र, झील, वन, पशु, पक्षी, नीला आकाश। यहाँ की भिन्न-भिन्न प्रकार की मृदा विविधता लिए ये भारत श्रेष्ठता का प्रतीक। हम कहीं न कहीं दूसरों को ये सोचने पर मजबूर कर देते हैं कि ये देश इतना सुन्दर है। जिसके ये बखान करते नहीं थकते। गीतों की लहर इतने उत्सव, त्यौहार, पश्चिम का गरबा, उत्तर की तीज, पंजाब की लोहड़ी, दक्षिण के ओणम, पोंगल, महाराष्ट्र की गणेश चतुर्थी, बिहार उत्तर प्रदेश का महारास आदि। तो यहाँ के लोग कितने अच्छे होंगे। तब हम उन्हें अपने महापुरूषों की जीवनियाँ उनका तप, त्याग, उनका बलिदान बताते हैं कि कैसे ऋषि दयानन्द ने अपना बलिदान जहर खाकर दिया। वीर शिवाजी, महाराणा प्रताप आदि मुगलों से लड़ते रहे। कैसे वीरागंना, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजों से लड़ती हुई उनकी तलवारें और गोलियों से छलनी और लहुलुहान होती हुई वीरगति को प्राप्त हो गई। पं. लेखराम जिसे छुरा घोप कर मार दिया गया। राजगुरू सुखदेव मंगल पांडे, राम प्रसाद बिस्मिल, उधम सिंह, भगत सिंह जैसे युवा भरी जवानी में हसँते हुए फाँसी के फँदे पर झुल गए। कैसे इस राष्ट्र की महिलाएँ अपनी अस्मिता को बचाने के लिए बलिदान हो गई। कैसे चन्द्रशेखर आजाद 'आजाद' ही मरे। कैसे स्वामी श्रद्धानन्द ने सीने पर गोलियाँ खाई। कैसे लाला लाजपत राय जी स्वाधीनता संग्राम में लाठियाँ खाई हम इतने तारीफों के पुल बाँध देते है। यदि शुरू करो तो खत्म होने का नाम ही नहीं लेते।

परन्तु क्या हम इतिहास के ही गुणगान गाते रहें, क्या वर्तमान को न सभाँले। वे तो थे जब थे, उन्होंने दिए हमारे लिए बलिदान, इस राष्ट्र के लिए ताकि हम उनसे प्रेरणा लें, शिक्षा लें, जागरूकता लें, गति लें। उन्होंने बलिदान इसलिए नहीं दिए कि वे तो आराम को छोड़ कर कोल्हु में जुड़े। वीर साबरकर बैरिस्टर थे चाहते तो आराम की जिंदगी जी सकते थे। बलिदान हमारे लिए दिया ताकि हम जागरूक व सजग रहें ना कि हम निद्रा आलस्य, अकर्मण्यता में पड़े रहे। वेद आज्ञा देते हैं- **''योगक्षमो न कल्पताम्''** अर्थात् हम पुरुषार्थ करते रहें, अपनी स्वाधीनता को मनाए रखें। परंतु जहाँ हमें जयचंदो जैसों को देखकर सबक लेना चाहिए था वहाँ हम खुद ही गद्दार, देशद्रोही बनते जा रहे है। गुणगान वही गा सकते है। जो खुद गुणवान हो। बेटियों को, नारियों को उचित सम्मान दिलाने की मंच पर बात करने वाले अपने घर की नारियों का अपमान करते हैं। एक तरफ अदृश्य लक्ष्मी की पुजा की जाती है वहीं घर की लक्ष्मी का तिरस्कार किया जाता है, दूसरी तरफ माता के जयकारे लगाये जाते हैं। ना उनकी चीत्कार कोई सुनता है क्योंकि कान तो पहले ही अल्लाह-हो-अकबर और माता के जयकारों से बहरे हो चुके हैं। कैसे बताएँ इसे महान। महान बताने के लिए सिर्फ हमारे पास हमारा इतिहास है। वर्तमान परिस्थियाँ तो इतनी भयानक दिखाई देती है। मानो हम तो जैसे सिर्फ भविष्य की सोच-सोच कर जी रहे हैं। कहीं प्रदूषण, महामारी, संपदा, दंगे-कत्ले आम, भ्रूणहत्या, दहेज, अंधविश्वास, बलात्कार, अनाचार, भ्रष्टाचार, दुराचार, व्यभिचार आदि समस्याएँ। हम तो वर्तमान में जी ही नहीं रहे। इतनी समस्याएँ हमारे सामने मुहं बाए खड़ी हैं। हम युवाओं को चाहिए कि हम सब सबसे पहले अपने चरित्र को ऊंचा उठाए। और अपने सात्विक चरित्र से ऐसा शखनांद करे। जिससे अनाचार, व्यभिचार, बलात्कार, दुराचार जैसे दैत्य भयभीत हो उठें। तभी इस देश की आधी आबादी भयरहीत हो जाएगी। तब हम खुलकर इस राष्ट्र के गुणगान, बखान करने के लायक हो सकते हैं, (यदि हम गहराई से सोचें तो) अन्यथा भारत तो ऐसा देश है जिसे हमारे शास्त्र कहते है **''स्वर्गापवर्गा भूमिश्च''** अर्थात् स्वर्ग और मोक्ष की भूमि। जहाँ ऋषि मुनियों ने जन्म लिया। हमें भी दिखाना होगा कि हम भी उन्हीं ऋषि मुनियों की सन्तानें है। जिंहोने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान की दसों कसौटियों पर अपने जीवन को उतारा था और यही हम सब का कर्तव्य है।

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा की मासिक गतिविधियाँ

बिना सिद्धांतों को समझे, उन्हें धारण किए मनुष्य का निर्माण नहीं होता है। राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा निरन्तर वेद द्वारा प्रतिपादित और ऋषि दयानन्द द्वारा व्याख्यायित सिद्धांतों के माध्यम से निर्माण कार्य में संलग्न है। विगत् माह भी महिला व पुरुषों के लिए निम्न आर्य / आर्या निर्माण सत्र लगाए गए।

आर्य प्रशिक्षण सत्र

	स्थान	दिनांक
1.	गाँव-अटौर नगला, जिला गाजियाबाद, उ. प्र.	06-07 सित.
2.	आर्य समाज शिवाजी कॉलोनी, रोहतक, हरियाणा	06-07 सित.
3.	आर्य समाज मोहिदीनपुर करनाल, हरियाणा	13-14 सित.
4.	आर्य समाज, फिरोजपुर झिरका, मेवात, हरियाणा	13-14 सित.
5.	ब्राह्मण धर्मशाला, जीन्द, हरियाणा	13-14 सित.
6.	चौपाल निकट शिव मन्दिर, कंझावला, दिल्ली	13-14 सित.
7.	आर्य समाज, सैक्टर-33, नोएडा, उ० प्र०	20-21 सित.
8.	आचार्य महाविद्यालय, चित्तौड़ा झाल मुजफ्फरनगर, उ.प्र.	20-21 सित.
9.	अम्बेडकर भवन, संजय पुरी मोदीनगर, गाजियाबाद उ. प्र.	20-21 सित.
10.	आर्य समाज शिवाजी कॉलोनी, रोहतक, उपासना सत्र	27-28 सित.
11.	दयानन्द भवन, सीवाहा, पानीपत, हरियाणा	27-28 सित.

सूचना

सभी आर्यगणों से अनुरोध है कि राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा द्वारा भिन्न-भिन्न स्थानों पर आयोजित होने वाले कार्यक्रमों सम्बन्धी सूचना पत्रिका के ई-मेल पते :- krinvantovishwaryam@gmail.com पर भेंजे साथ ही सम्बन्धित चित्र (फोटो) भी इसी पते पर भेज देंवे जिससे कि उनको समय पर पत्रिका में प्रकाशित किया जा सके

कार्तिक मास, हेमंत ऋतु, कलि-5115, वि. 2071
(09 अक्टूबर 2014 से 06 नवम्बर 2014)
प्रातः कालः 5 बजकर 30 मिनट से (5.30 A.M.)
सांय कालः 6 बजकर 00 मिनट से (6.00 P.M.)

संध्या काल

मार्गशीर्ष मास, हेमंत ऋतु, कलि-5115, वि. 2071
(07 नवम्बर 2014 से 06 दिसम्बर 2014)
प्रातः कालः 6 बजकर 00 मिनट से (6.00 A.M.)
सांय कालः 6 बजकर 00 मिनट से (6.00 P.M.)

ईश्वर, जीव, प्रकृति और मोक्ष

-आर्य रमेश रोहिल्ला, नांगलोई

तीन चीजें अनादि हैं-१. ईश्वर २. जीव और ३. प्रकृति। यदि मनुष्य इन तीनों के भेद को जान ले तो वह परम सुख की प्राप्ति कर सकता है। ईश्वर सृष्टिकर्ता, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, निर्विकार, अजन्मा व अन्तर्यामी है। ईश्वर के विषय में अनेक मतभेद हैं। ईश्वर है या नहीं, और है तो किस प्रकार का है, कहाँ रहता है इत्यादि। ईश्वर के विषय में मनुष्य का ज्ञान संशय रहित होना आवश्यक है। यदि संशय बना रहेगा तो ईश्वर को पाने की तीव्र इच्छा नहीं होगी। इसलिए ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को जानकर संशयों का निवारण करना बहुत आवश्यक है। मनुष्य को समझना चाहिए कि ईश्वर भी एक वस्तु है। जैसे भूमि, जल, अग्नि आदि वस्तु (द्रव्य-पदार्थ) हैं, वैसे ही ईश्वर भी वस्तु-द्रव्य-पदार्थ है। जिसमें गुण रहते हैं उसी को वस्तु-द्रव्य अथवा पदार्थ कहते हैं। भूमि में गन्ध आदि गुण तथा जल में रसादि गुण रहते हैं। इसलिए न्याय, वैशेषिक आदि दर्शनों के अनुसार इनको वस्तु-द्रव्य अथवा पदार्थ कहते हैं। इसी प्रकार ईश्वर में ज्ञान, आनन्द, बलादि अनेक गुण रहते हैं, अत: ईश्वर एक वस्तु, द्रव्य या पदार्थ है। वस्तु, द्रव्य या पदार्थ ये पर्यायवाची शब्द हैं। जैसे भूमि, जलादि पदार्थ हमारे उपयोग में आते हैं उसी प्रकार ईश्वर भी हमारे उपयोग में आता है। बहुत से लोग ईश्वर से अन्जान हैं, इसलिए ईश्वर का उपयोग नहीं कर पाते। ईश्वर एक ही है, अनेक नहीं। मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि सभी प्राणी ईश्वर की सन्तान हैं और ईश्वर सभी प्रणियों का पिता है, ऐसा समझना चाहिए।

योग दर्शन के अनुसार ईश्वर समस्त क्लेशों अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश आदि से रहित है। भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों में जिसे कोई क्लेश नहीं छूता, जो कभी भी अशुभ कर्म नहीं करता, केवल शुभ कर्म ही करता है और अपने किए हुए कर्मों का फल नहीं भोगता। कर्मफल भोगने से उत्पन्न होने वाली वासनाओं से रहित है। ईश्वर ऐसा पुरूष विशेष है जिसके ज्ञान की तुलना किसी अन्य व्यक्ति से नहीं की जा सकती। जीव अल्पज्ञ है अर्थात् जीव अपने अल्प ज्ञान से ना तो व्यवहार को सिद्ध कर सकता है और ना ही मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। ईश्वर प्रदत्त ज्ञान से ही जीवात्मा अपने लौकिक कार्य करने व मोक्ष प्राप्त करने में सक्षम होता है। वह ईश्वर अनन्त ज्ञान का भंडार है। जो गुरूओं का भी गुरु है, वह ईश्वर है। जितने भी विद्या पढ़ाने वाले गुरु वर्तमान काल में हैं, भूत काल में और आगे भविष्य में होंगे, जो उन सबका गुरु है, वह ईश्वर है। सृष्टि के आदि में ईश्वर ने अपना ज्ञान चार ऋषियों- अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा नामक ऋषियों को प्रदान किया। चारों ऋषियों को एक-एक वेद का ज्ञान दिया। चार वेद-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद हैं जिनमें सारा लौकिक ज्ञान व मोक्ष प्राप्ति का उपाय भी बताया है! संसार की सभी जड़-चेतन वस्तुओं का ज्ञान ईश्वर ने वेद के रूप प्राणी मात्र के सुख के लिए प्रदत्त किया है। अत: ऋषियों ने उस वेद को दूसरे मनुष्यों को पढ़ाया जिससे मनुष्य विद्वान बने और यह प्रक्रिया आज भी चल रही है। आज-कल जो भी विद्या पढ़ाई जाती है, वह चाहे भौतिक विद्या हो और चाहे आध्यात्मिक विद्या हो, उस सम्पूर्ण विद्या का आदिमूल ईश्वर है, अन्य कोई नहीं है। जब यह संसार नहीं बना था, उस समय सभी विद्याएँ ईश्वर में विद्यमान थी। यदि ईश्वर में सभी विद्याएँ न होती तो आज कहाँ से आती। इसलिए ईश्वर सब गुरूओं का भी गुरु है। ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान करते पुन: उसके नाम का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

ईश्वर सत् है अर्थात् उसका कभी भी विनाश नहीं होता और वह एक सत्तात्मक पदार्थ है जिसकी अपनी सत्ता है। चेतन (ज्ञानी) है। आनन्द है-सुखस्वरूप है, नित्यसुख से युक्त है। निराकार है-यानि आकृति से रहित है। सर्वशक्तिमान है अर्थात सृष्टि की उत्पति, स्थिति, प्रलय करने में तथा जीवों को कर्मफल देने में किसी की सहायता के बिना अपने कर्म करने में समर्थ है। न्यायकारी है-जो जीव जितना अच्छा या बुरा कर्म करता है उसको उतना ही अच्छा या बुरा फल देता है, न्यून या अधिक नहीं देता। दयालु है-उत्तम-उत्तम पदार्थ देने के स्वभाव वाला है और बुरे कर्मों को करने वालों को उचित दण्ड देकर उनको बुराई से बचा कर उन पर दया करता है। अजन्मा है- कभी भी जन्म नहीं लेता। अनन्त है-सीमा रहित है। निर्विकार है-ईश्वर में कभी किसी प्रकार का विकार-परिवर्तन घटना, बढ़ना, गलना और कभी, क्रोध आदि होना, नहीं होता। अनादि है- उत्पत्ति रहित है। सदा से है। अनुपम है-ईश्वर से तुल्य कोई भी पदार्थ नहीं है। सर्वाधार है-सभी पदार्थों का आधार-आश्रय है। सर्वेश्वर है- समस्त ऐश्वर्य अर्थात् अनन्त ज्ञान, आनन्द, बल ईश्वर में है। सर्वव्यापक है-सभी जड़-चेतन, कारण और कार्य पदार्थों में विद्यमान है। सर्वान्तर्यामी है-कभी बूढ़ा नहीं होता। अमर है- कभी मरता नहीं है, नष्ट नहीं होता है। अभय है-कभी भी किसी से डरता नहीं है। नित्य है-सदा विद्यमान रहता है। पवित्र है-अज्ञान, अधर्म आदि दोषों से रहित है। सृष्टि करता है-सृष्टि का रचयिता है। ये ईश्वर के लक्षण हैं। जो व्यक्ति ईश्वर को ऐसा जानता, मानता और व्यवहार में लाता है, ईश्वर की आज्ञा का पालन करता तथा लैकिक पदार्थों की उपासना को छोड़कर ईश्वर की उपासना करता है, वही मनुष्य विवेकी है अन्य नहीं।

अब जीव के स्वरुप को जानने का प्रयास करेंगे। जीव सत् है जिसका कभी विनाश नहीं होता, यह एक सत्तात्मक पदार्थ है। चित् है- चेतन है अर्थात ज्ञानवन है। अनादि है- इसकी कभी उत्पति नहीं होती। इच्छा से युक्त है जिस वस्तु को हितकारी समझता है उसको प्राप्त करने की इच्छा करता है। एक देशीय है-एक समय में एक स्थान पर रहता है, ईश्वर की भाँति सर्वव्यापक नहीं है। अल्पज्ञ है-थोड़ा जानता है। ईश्वर की तरह सर्वज्ञ नहीं है। कर्म करने में स्वतन्त्र है अर्थात् अच्छे-बुरे कर्म करने में स्वतन्त्र है लेकिन उन कर्मों का फल भोगने में ईश्वर के आधीन है। जब जीवात्मा अपने स्वरूप को जान लेता है तो वह मन में इन्द्रियों को अपने नियन्त्रण में ले लेता है। जब व्यक्ति आत्मा के स्वरूप को ठीक प्रकार से जान लेता है तो चित्त की वृत्तियों के निरोध करने में निश्चितरूपेण सफलता प्राप्त कर लेता है। चित की वृतियाँ क्या हैं, मेरा स्वरुप क्या है, और जिसको योगाभ्यास के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, उस ईश्वर का स्वरूप क्या है इसका ज्ञान हुए बिना व्यक्ति वृतियों का विरोध नहीं कर सकता।

जैसे ईश्वर का स्वरूप और जीव का स्वरूप जानना आवश्यक है। सांख्यदर्शन के अनुसार प्रकृति का स्वरुप इस प्रकार है- सत्व, रज और तम की साम्यावस्था प्रकृति है। सत्व, रज और तम ये तीन प्रकार के अत्यन्त सूक्ष्म द्रव्य हैं। इसमें सत्व प्रकाशशील है, रज गतिशील है और तम स्थितिशील है। ईश्वर ने प्रकृति से ये तीनों चीजें लेकर संसार की रचना की है। सत्व, रज और तम की साम्यावस्था का नाम प्रकृति और विषमावस्था का नाम विकृति है, संसार है। प्रकृति से बने सभी प्रदार्थ जड़ हैं अर्थात ज्ञान रहित हैं। संक्षिप्त रुप से ईश्वर और जीव चेतन हैं और प्रकृति और उसमें बने सभी पदार्थ जड़ हैं। जब यह संसार प्रलय को प्राप्त हो जाता है तब सत्व, रज और तम साम्यावस्था में रहते हैं अर्थात् इस समय इनकी विषमावस्था समाप्त हो जाती है। इन तीनों से व्यक्तियों को सुख, दु:ख व मोक्ष प्राप्त होते हैं। मोह नाम अविधा का है और अविद्या पागलपन से घोर दु:ख ही प्राप्त होता है! इसलिए महार्षि कपिलाचार्य ने कहा है कि **'कुत्रापि कोऽपि सुखी न'** आर्थात् संसार में कोई व्यक्ति सुखी नहीं है। इन दु:खों से बचने का उपाय एक ही है मोक्ष प्राप्त करना। हर मनुष्य सुख चाहता है। चाहे पाँच वर्ष का बालक हो या पच्चीस वर्ष का युवा या वृद्ध स्त्री हो या पुरुष हो, प्रत्येक व्यक्ति सदा दुखों से छूटकर नित्यानन्द को प्राप्त करना चाहता है, परन्तु इसे शायद योग के

शेष पृष्ठ 6 पर

निष्क्रियता से बचना आवश्यक

पुरानी पद्धति के पण्डित लोग लोक-हित के कार्यों से विरक्त हो जाते हैं। निरे नाम का पर घोटा लगाने वाले, संसार-सुधार में कुछ भी समय नहीं देते प्रत्युत व्यवहारिक कर्मों से घृणा करने लग जाते हैं। कुछ-एक इने-गिने सन्त अन्य अवश्य ऐसे हुए हैं जिन्होंने अपने शिष्यों को समाज-रक्षा के लिये प्रेरित किया परन्तु जिस संसार का उपकार कर्म करना स्वामी जी ने आर्य समाज के कर्त्तव्यों में मुख्य कर्त्तव्य स्थापित किया, देश-हित के लिये दौड़-धूप की और एक बड़े भारी परिणाम में शिल्प-कला का उद्योग करना आरम्भ किया, इस प्रकार इस दिन तक किसी धर्माचार्य ने नहीं किया था।

वैदिक काल के अनन्तर आर्यावर्त में जितना धार्मिक साहित्य संचित हुआ है उसमें निष्क्रियवाद को अति प्रधानता दी गई है। निष्क्रियता को ही एक प्रकार से धर्म बताया गया है। ऐसे साहित्य में कर्मकाण्ड की इतनी अवहेलना की गई है कि इसे आज्ञानियों के बाँधने के लिये खूँटा वर्णन किया। कर्म-रूप धर्म का खण्डन करते हुऐ कई ज्ञानी ध्रुव पुरूष, पुरूष भाषा में कर्मकाण्डियों को पशु तक कह गये हैं। हम मानते हैं कि इस निष्क्रियवाद के चरण-चिह्न महाभारत-काल में ही चमकने लग गये थे। इनको मिटाने के लिये उस समय के परम कर्मयोगी श्रीकृष्ण देव ने पूर्ण बल लगाया था। वे उस समय मिटे तो नहीं किन्तु ढ़ाई सहस्त्र वर्ष के पश्चात् ऐसे चमके कि उन्होंने सारे साहित्य को चकाचौंध लगा दी। बुद्ध महाराज के प्रचार ने अकर्मण्यता -वाद को अति पुष्ट किया। वही समय निष्क्रियवाद का यौवन-युग कहा जा सकता है। निष्क्रिय धर्म का पालन कोई भी मनुष्य नहीं कर सकता। क्रिया के किये बिना किसी की भी प्राण यात्रा नहीं चल सकती। अपने विचारों को प्रकट करने के लिये भी क्रिया की आवश्यकता होती है। और तो और, निष्क्रियवाद धर्म है, ऐसी समझ, ऐसा ज्ञान और ऐसी धारणा भी सूक्ष्म क्रिया से ही उत्पन्न होती है। सृष्टि में क्रिया स्वभाव से ही हो रही है। प्रत्येक परमाणु गतिमान् है। यदि एक भी अणु एक पल के लिये निष्क्रिय हो जाये तो सारा ब्रह्माण्ड रूक जाये। उसी क्षण में उसका सर्वनाश हो जाये। हमारा शरीर इस ब्रह्माण्ड का एकांशमात्र है। जो नियम समष्टि में काम कर रहा है। वही इस व्यष्टि देह में भी कार्य करता है। इस करण गतिशील संसार में निष्क्रियता का स्वप्न देखना भी सर्वथा असम्भव है। निष्क्रियता धर्म नहीं है। धर्म तो कर्मात्मक है। वह पुरूषार्थ से उपार्जित है। क्रिया से निष्पन्न होता है। इसलिये ज्ञानियों ने धर्म का लक्षण प्रेरणा वर्णन किया है ऐहिक और पारलौकिक सुख-सिद्धि का साधन बताया है। स्मार्त्त धर्म के व्याख्याता भगवान् मनु भी धर्म लक्षण क्रिया रूप ही वर्णन करते हैं। यदि अक्रिय रूप धर्म हो तो भेड़ें और बकरियाँ कभी असत्य भाषण नहीं करती। मिमियाने के बिना वे दूसरा कोई शब्द नहीं बोलती।

तब तो वे सत्यवादियों में सर्व-शिरोमणि हो जाएँ। भोले-भाले मृग मनुष्य की पाँव की आहट सुनकर कोसों दूर भाग जाते हैं। वे कभी किसी से हिंसा नहीं करते परन्तु कोई भी अकर्मवादी उनको परम दयालु नहीं मानता। एक अन्धा, बहरा, मूक और विकल शरीर मनुष्य-वन में जीवन के दिन काटता हुआ न अशुभ सुनता है और न अशुभ देखता है, न अशुभ बोलता है और न अशुभ करता है, परन्तु वह मुनि नहीं कहला सकता। उन्मत्त अथवा मूर्च्छित मनुष्य अशुभ संकल्प-विकल्प से शून्य होता है पर वह महात्मा नहीं माना जाता। गहरी नींद में कोई अशुभ क्रिया नहीं होती परन्तु वह समय पुण्य उपार्जन का समय नहीं समझा जाता। अशुभ विचारों को, और अशुभ आचारों द्वारा धक्का देकर भीतर से निकाल देना, उनको अपने निकट न आने देना शुभ सम्पत्ति-सम्पादक का सर्वोत्तम साधन है। सह साधन क्रिया-जन्य है। यही कर्म है। आर्यों में जब से निष्क्रियवाद ने घर किया है तभी से इनका विनिपत होना आरम्भ हुआ है। जातियों में जो नर-रत्न होते हैं वे प्रायः धार्मिक भी हुआ करते हैं। समाज के लिये उनका जीवन अत्यन्त उपयोगी होता है। उनका समाज से पृथक हो जाना समाज को अवनत कराना है। निष्क्रियवाद के निष्ठावान् सज्जन जन समूह से दूर भागते हैं। उनको समाज संशोधन, समाज सुधार और समाज संरक्षण कर्त्तव्य-कर्म ज्ञात नहीं होते। वे उलटे इन कर्मों से घृणा करने लग जाते हैं। यही कारण है कि अकर्मवाद की पोषण पुस्तकों में पुरूषार्थ धर्म का निरादर है। गृहस्थ को पाप और बन्धन वर्णन किया है। माता-पिता, पुत्र, कलत्र आदि सम्बन्धों को दुःख का कारण माना गया है। क्षात्र धर्मादि उत्तम धर्मों को प्रशंसित नहीं समझा गया। आर्य प्रजा के अनेक दीप्तिमान रत्न इसी अकर्मवाद की उलझन में उलझकर अपनी योग्यता नष्ट कर रहे हैं। इसकी उज्जवल क्रान्ति से किसी ने कुछ भी लाभ नहीं उठाया। इसी निष्क्रियवाद की बेल के फल का नाम त्यागवाद है। त्यागी कहलाने में लोग जब से मुक्ति और महत्ता मानने लगे हैं। तब से आर्य जाति में नाना अनिष्टों की, दुःखों की और अभावों की सृष्टि हुई है। यहाँ लाखों त्यागी वास करते हैं। उनकी आँखों के सामने, उनकी कुटियाओं के पास, उनकी कन्दराओं के निकट और उनके आश्रमों के समीप दिन दोपहर में उनका धर्म-धन लुटा जा रहा है। लोग अपने पुरातन धर्म का परित्याग कर रहे हैं। अनाथों की बिलबिलाहट और कृश-प्रजा का करूण-क्रण्दन हो रहा है। इसे देखकर पराये भी पिघल गए हैं। परन्तु इधर ये अपने सर्वत्यागी हैं कि दुर्दिन-दलित दरिद्र बंधुओं पर दूर खड़े दया दिखाने में भी आनाकानी करते हैं। इस संकीर्णता का प्रबल कारण है यहाँ के त्यागियों ने त्याग के अर्थ छुआछूत समझ रक्खे हैं। इसका तात्पर्य घृणा करना, पृथक हो जाना, संकुचित बनना और पीड़ित प्राणियों को भी क्रियात्मक सहायता न देना निकाला है। सच्चा त्याग वही है जिसमें घृणा का त्याग है, वैर विरोध का त्याग है। दूसरे को सुख देने के लिए अपने प्राणों तक की भी ममता न करना सच्चा त्याग है। यह परम त्याग ईश्वर-भक्ति और प्रजा से उत्पन्न होता है। भक्ति और प्रीति पुरुषार्थ और शुभ क्रिया के बिना प्राप्त नहीं होती। स्वामी जी महाराज ने समाज-संस्कार करते समय क्रियात्मक धर्म का निरूपण किया है। उन्होंने कई स्थलों में कहा है कि पर-हानि पाप और परोपकार पुण्य है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में गृहस्थादि आश्रमों और चारों वर्णों को मोक्ष धर्म के साधनों का वर्णन किया है।

स्वामी सत्यानन्द की पुस्तक 'श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश' से साभार

॥ शान्तिपाठ ॥

ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ शान्तिगीत ॥

शान्ति करें प्रभु हम त्रिभुवन में,
शान्ति करें प्रकाश सृजक में,
अन्तरिक्ष में और भूमि में।
शान्ति करें प्रभु.....
जल में शान्ति करें प्राणों में,
सोमादि औषधी, वनस्पति में।
शान्ति करें प्रभु.....
शान्ति देव सब वेद पठन में,
अखिल वस्तु के हो कण-कण में,
शान्ति बढ़े प्रभु हम आर्यों में,
शान्ति करें प्रभु हम त्रिभुवन में।

धर्मयुक्त व्यवहार से सुख

-आचार्य लोकेन्द्र शास्त्री, दिल्ली

''जो मनुष्य धर्मयुक्त व्यवहार में ठीक-ठीक वर्त्तता है, उसको सर्वत्र सुख-लाभ और जो विपरीत वर्त्तता है वह सदा दु:खी होकर अपनी हानि कर लेता है।'' स्वामी दयान्नद सरस्वती 'व्यवहारभानु' भूमिका।।

विचारने की बात यह है- धर्मयुक्त व्यवहार से सुख की प्राप्ति मनुष्य कब प्राप्त कर सकता है, वह धार्मिक कब बनता है? धर्म क्या है? अधर्म क्या है? सुख क्या है? दु:ख क्या है?

जब हम इन चारों बातों पर विचार करते हैं, तो प्रथम सोपान है- धर्म। धर्म क्या है? मनुष्य सामाजिक प्राणी है, समाज में यथायोग्य व्यवहार वह ठीक धर्म को जान कर ही कर सकता है। धर्म निरपेक्ष देश में ठीक-ठीक जानने की व्यवस्था नहीं है, ना कोई प्रयास ही करता है, कुछ जेहाद को धर्म मानते हैं, कोई सभी मतों को केवल हिन्दुत्व में धारण करने की शक्ति मानते हैं क्योंकि उनका हाजमा बहुत मजबूत है, इसी असहिष्णु धार्मिक भावनाओं के कारण आज हमारा आर्य्यावर्त्त देश मलेच्छ देशों से भी भयंकर वातावरण में जी रहा है। हर तरफ दंगा, भय, भ्रष्टाचार, दुराचार, अनाचार ही दिखाई देता है। जो धर्म के ठेकेदार बने हुए हैं वे आपस में फूट डालो और जनता को मूर्ख बनाकर अपने स्वार्थों की पूर्ति में लगे हुए हैं। यह है आज देश की वर्तमान स्थिति। आर्यों, अब चिन्तन यह करना है कि इस दशा से कैसे बचा जाये और वर्तमान स्थिति को कैसे सुधारा जाये।

मनुष्य मात्र का धर्म एक है- वैदिक धर्म, लेकिन मानने वाले कितने हैं? चलो मौखिक रुप से मानने वाले कुछ हैं भी! परन्तु आचरण में, जीवन के प्रत्येक व्यवहार में वैदिक धर्म का पालन करने वाले नगण्य मनुष्य दिखाई देते हैं।

अब विचार करें? सुख का आधार जो धर्मयुक्त व्यवहार है, उसके हेतु मनुष्य को अपने जीवन में क्या-क्या परिवर्तन करने होंगे। जब वह अपने व्यवहार में धर्मयुक्त आचरण करने लगेगा, तब वह सुख का अनुभव अवश्य करेगा!

प्रथम धार्मिकता:- मनुष्य का आस्तिक होना, ठीक-ठीक वैदिक धर्म के अनुकूल ईश्वर का स्वरुप जान कर, उस निराकार, सुखस्वरूप व न्यायकारी प्रभु की भक्ति करते हुए नित्य प्रति किये हुए, अपने कर्मों का निरीक्षण करना, ठीक कर्मों को बढ़ाते जाना और जिन कर्मों के करने में स्वत: ही सुख न मिले, जिन्हें आत्मा स्वीकार न करे, उनको छोड़ते जाना। जो नित्य प्रतिदिन इस प्रकार अपना आत्मनिरीक्षण करेगा, उसके जीवन में सुखस्वरूप ईश्वर के प्रति श्रद्धा बढ़ती चली जाएगी और वह सुख की प्राप्ति की तरफ बढ़ने लगेगा।

इसका आधार है- सन्ध्या व उपासना-सम्यक् प्रकार ध्यान पूर्वक अपनी आत्मा का निरीक्षण करना। तदोपरान्त, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हेतु प्रार्थना करना, सन्ध्या का मुख्य उददेश्य है। केवल मन्त्र पाठ करते जाना और उठ कर फिर पूर्ववत् आचरण करने से कोई सुख प्राप्त नहीं होने वाला है! ऋषिवर आगे लिखते हैं-**''ऐसा किस मनुष्य का आत्मा होगा कि जो सुखों को सिद्ध करने वाले व्यवहारों को छोड़कर उल्टा आचरण करने में प्रसन्न होता है। क्या यथा योग्य व्यवहार किये बिना किसी को सर्वसुख हो सकता है? क्या मनुष्य अच्छी शिक्षा से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फलों को सिद्ध नहीं कर सकता! और इसके बिना पशु के समान दु:खी नहीं रहता है? इसलिए सब मनुष्यों को सुशिक्षा से युक्त होना आवश्यक है इसलिये वह बालक से लेकर वृद्धप्रयन्त मनुष्यों के सुधार के अर्थ व्यवहार सम्बन्धी शिक्षा का विधान किया जाता है।''**

आर्यों! क्या कभी आर्य समाज की सभी सभाओं ने मिलकर ऋषिवर दयान्नद के इन दु:ख भरे शब्दों पर चिंतन किया? क्या धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फलों को सिद्ध करने के मार्ग को प्रशस्त करने के प्रयास मिलकर किये? जब कुछ महान आत्माओं ने प्रयास किया तब ही आर्य समाज दो भागों में बट गया। तब ही पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी और स्वामी श्रद्धानन्द जी जैसे विद्वानों के अथक प्रयासों की अवहेलना हमारे ही अपने लोगों ने की और आर्य समाज बंट गया। लेकिन सुख का आधार सुशिक्षा का प्रयास अगर ऋषिवर की भावनाओं के अनुसार आर्य समाज प्रारम्भ से करता, तो आज हमारी यह स्थिति न होती, जिसे देखकर दु:ख होता है।

बाल्यकाल से ही जब धर्म और अधर्म, आस्तिकता और नास्तिकता, परमात्मा और जीवात्मा का यथार्थ ज्ञान हम अपने बच्चों को देंगे तो घर से ही समाज और समाज से श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण होने लगेगा। परन्तु यह प्रयास करे कौन? आज तो पहले से ज्यादा द्वेष, संस्थाओं में विघटन, समाज में फैला पहले से ज्यादा पाखण्ड, गुरूडमवाद, अन्धविश्वास जगह-जगह धर्म के नाम पर दुकानें सजी हुई हैं, भोली-भाली जनता को विषधर, धर्म के ठेकेदार ठगते रहते हैं और वो भोली जनता ठगे जाने के बाद भी प्रसन्न होती हुई, गुरूडमवाद पर अथाह धन चढ़ाती है। जिस धन से वे अन्धविश्वास और दुराचार को अविद्या के कारण बढ़ाते जाते हैं।

अत: समस्त समस्याओं का समाधान है तो, आर्य समाज के सिद्धान्तों में है! ऋषिवर देव दयानन्द के मार्ग को अगर आज हम ज्यादा से ज्यादा प्रयास करके आगे बढ़ायें तो ज्ञान दीप जलने लगेगा।

अत: ऋषिवर के दु:ख भरे शब्दों पर गौर करके धर्मयुक्त आचरण एवं शिक्षा, कैसी शिक्षा-ऋषिवर के शब्दों में **''जिससे मनुष्य विद्यादि शुभगुणों की प्राप्ति और अविद्यादि दोषों को छोड़के सदा आनन्दित हो सकें, वह शिक्षा कहलाती है।''** अविद्यादि दोष क्या है, जड़ता से मूर्खता से मुक्ति पाकर दूसरों के सब सुखों को सिद्ध कर सकें।

पृष्ठ 4 का शेष

बिना सम्भव नहीं है, अत: प्रत्येक व्यक्ति के लिए योग का अनुष्ठान अनिवार्य है! जब व्यक्ति योगाभ्यास करते करते भोग की ऊँची अवस्था को प्राप्त कर लेता है तब अपने स्वरुप को विशुद्धरुप में जान लेता है अर्थात् सत्, रज, तम और इन तीनों के मिश्रण से उत्पन्न सूक्ष्म, स्थूल समस्त संसार की वस्तुओं से स्वयं को पृथक जानता है और ईश्वर का साक्षात्कार कर उसके स्वरूप में स्थित होकर आनन्द का अनुभव करता है, वैसे ही योग की ऊँची स्थिति को प्राप्त कर शरीर के विद्यमान रहते हुए भी मुक्ति जैसा अनुभव करता है। इस अवस्था की प्राप्ति होने पर अविद्या, अस्मिता, राग द्वेष, अभिनिवेश इन पाँच प्रकार के क्लेशों की परिसमाप्ति हो जाती है। इसी बात को यजुर्वेद में कहा है कि **'तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय'** उसी ईश्वर को जानकर मनुष्य मृत्यु आदि दु:खों से छूट जाता है, और कोई मार्ग दु:खों से छूटने का नहीं है।

उत्तम क्वालिटी के ओ३म् ध्वज, वैदिक साहित्य व आर्यावर्त्त हवन सामग्री की प्राप्ति हेतु सम्पर्क करें-

आर्य मार्किट, शिवाजी कॉलोनी, रोहतक

-सम्पर्क सूत्र- 9466904890

द्विदिवसीय आर्य/आर्या प्रशिक्षण के बाद सत्रार्थियों के अनुभव

राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा में मैं स्वयं पिछले दो दिन से नियमित उपस्थित हूं, मैं अपने अनुभव के आधार पर इस प्रशिक्षण में मुझे वेदों से सही लक्ष्य और मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। अत: मैं इस प्रशिक्षण के माध्यम से 'ईश्वर क्या है' व इस संसार में ईश्वर की क्या रूपरेखा वर्तमान में हम समझते हैं, यह बात मुझे स्पष्ट समझ में आया है।

इसमें हमें ईश्वर के रूपों को समझने का अवसर मिला है। अत: मैं यह कह सकता हूं कि मुझे आर्य बनने में अब कोई भी कठिनाई नहीं होगी, मैं नियमित संधया उपासना व अपने अपने कार्य को वेदों के अनुरूप अपने समय के साथ करता रहूँ, ऐसी प्रेरणा गुरू जी आपने हमें प्रदान की है कि मैं कोटि-कोटि आपको नमस्कार करता हूँ। धन्यवाद.....

दीपक सेन, आयु-34 वर्ष, योग्यता-बी.कॉम.
निवास-गोकुल धाम आफ्टा, सिहोर (म०प्र०)

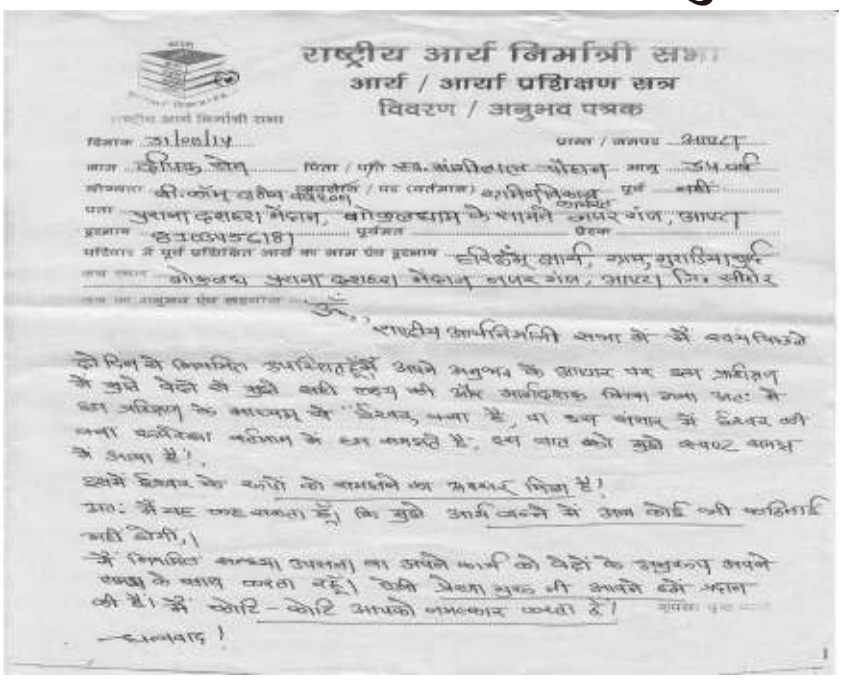

राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा में मैं विशेषकर युवाओं को राष्ट्र रक्षा के लिए प्रेरणा मिलती है, तथा युवक युवतियाँ आगे बढ़कर देश के लिए प्रेरित होते हैं। साथ ही मार्गदर्शक ने बहुत ही सुन्दर तरीके से सभी विषयों एवं मत मतान्तर पर समिक्षाएं की हैं तथा नव युवक युवतियों की शंकओं का बहुत रोचक एवं सरल व स्पष्ट तरीके से समाधान किया है।

मेरा मानना है कि इस सत्र एवं सभा के माध्यम से एवं सबके सहयोग और सतत् परिश्रम से हम अपनी गरिमा पद एवं प्रतिष्ठा पुन: प्राप्त कर सकते हैं, और एक बार फिर इस आर्यावर्त देश को पुन: विश्व गुरू विश्व विजेता बना सकते हैं।

महेश मालवीय, आयु-32 वर्ष, योग्यता-एम.ए.
कार्य-शिक्षक, निवास-अलीपुर मीरपुरा, आफ्टा, सिहोर (म०प्र०)

राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा का प्रशिक्षण सत्र बहुत ही रोचाक एवं हृदयग्राही है, समस्त विषयों का 'ईश्वर, धर्म, समाज, राष्ट्र, भूत-प्रेत' आदि का वैदिक सिद्धान्तों द्वारा प्रतिपादन किया जाना वास्तव मैं सराहनीय है।

इस तरह के सत्रों से ऋषि दयानन्द के सपनों को सच में पूरा किया जा सकता है तथा पुन: आर्यावर्त का निर्माण हो सकता है।

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा द्वारा आयोजित इस कार्यक्रम को सफल बनाने में मैं अध्यापक के नाते छात्र-निर्माण में अपना सहयोग दे सकता हूँ।

सुभाष चन्द्र, आयु-36 वर्ष, योग्यता-शास्त्री, एम.ए.
कार्य-शिक्षक, निवास-न्यू भारत नगर , भिवानी, हरियाणा

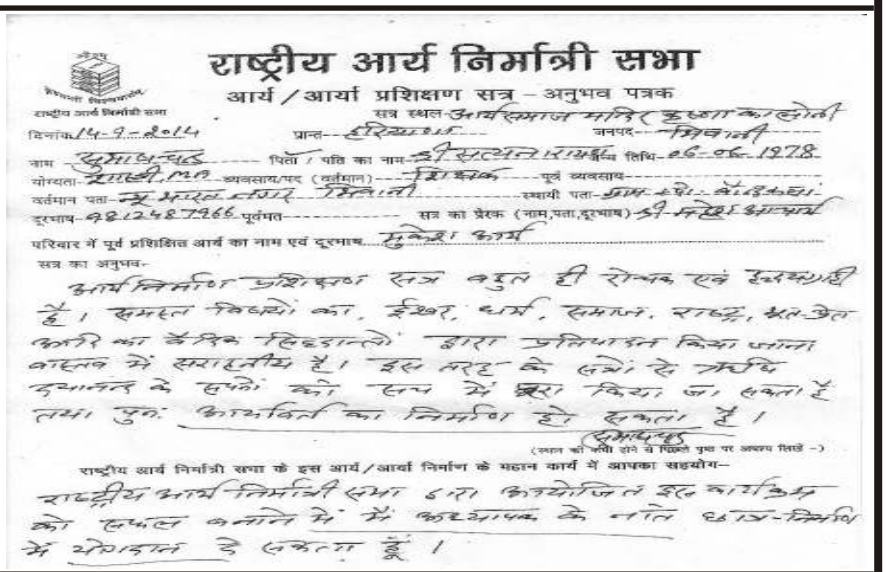

में लगभग 17-18 वर्षों से आर्य समाज व गुरुकुलीय परम्परा में फल-फूल रहा हूँ। इस क्रम से न जाने हमने कितने विद्वानों के प्रवचनों एवं शिवरों में भाग लिये। इनमें से किसी विद्वानों के मुख से वैदिक सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण हमने आज तक इतना अच्छा व तर्कपूर्ण ढंग से नहीं सुना, जितना आज मुझे इस सत्र में सुनने को प्राप्त हुआ है। इस सत्र के संचालक महोदय आर्य के हम कृतज्ञ हैं।

पं० सुनील आर्य, आयु-42 वर्ष, योग्यता-एम.ए.
कार्य-प्रचारक, निवास-आर्य समाज, पठानकोट, पंजाब

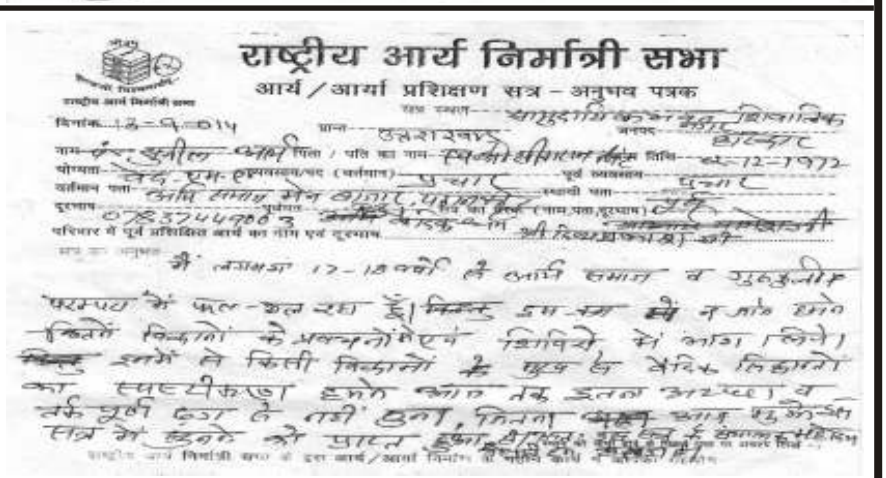

आर.एन.आई-संख्या : DELHIN/2007/23260
पोस्टल रजि. संख्या : DL (N) 06/213/14-16

अक्टूबर 2014

आर्य प्रशिक्षण सत्र (13-14 सितम्बर) कंझावला, दिल्ली में आचार्य राजेश जी एवं आर्य देवेन्द्र जी

आर्य प्रशिक्षण सत्र (13-14 सितम्बर) आर्य समाज मोहिदीनपुर करनाल, हरियाणा में आचार्य धर्मपाल जी

आर्य प्रशिक्षण सत्र (06-07 सितम्बर) गाँव-अटौर नगला, जिला गाजियाबाद, उ. प्र. में आचार्य डॉ॰ विरेन्द्र आर्यव्रत

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् पत्रिका की सदस्यता हेतु 100 रुपए द्विवार्षिक शुल्क मनीआर्डर से प्रांतीय कार्यालय के पते पर भेजें, स्थानीय राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा के सदस्यों के पास भी शुल्क जमा कर रसीद ले सकते हैं। पूरा पता अवश्य लिखें, न पहुंचने पर दूरभाष से कार्यालय में सूचना दें। जिन सदस्यों की सदस्यता एक वर्ष से अधिक पुरानी है वे अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करवा लेवें।

स्वामी व प्रकाशक आचार्य परमदेव मीमांसक एवं सम्पादक आचार्य हनुमत् प्रसाद द्वारा सांगोपांगवेद विद्यापीठ, आर्ष गुरुकुल, टटेसर-जौन्ती, दिल्ली-81 से प्रकाशित एवं सुदर्शन प्रैस, दिल्ली-87 से मुद्रित।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् - समाचार पत्र मे छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक का पूर्णतया सहमत होना आवश्यक नहीं है। क्योंकि अनवधानतावश त्रुटि एवं मतभिन्न होना सम्भव है। सभी न्यायिक विवाद दिल्ली में निपटाये जाएंगे।